महावाज़्यार्थ निर्धारण में लक्षणा की उपयुज़्तता

ममता स्नेही

कूटशब्द *अद्वैत, मुज़्यवृत्ति, गुणवृत्ति, लक्षणा, जहल्लक्षणा, अजहल्लक्षणा, जहदजहल्लक्षणा, प्रत्यगात्मा।*

शाङ्करवेदान्त का परमप्रयोजन ब्रह्मात्मैज़्य अर्थात् अद्वैत की स्थापना करना है तथा इसमें शब्दप्रमाण के अतिरिज़्त अन्य किसी भी प्रमाण की गति नहीं है ज़्योंकि ब्रह्म को अवाङ्मनसगोचर कहा गया है। ब्रह्मात्मैज़्य की प्राप्ति हेतु औपनिषदिक महावाज़्यों का अर्थनिर्धारण किया जाता है जो कि जीव-ब्रह्म ऐज़्य प्रतिपादक कहे गए हैं। इस ऐज़्य को बतलाने में शब्द की अभिधावृति (मुज़्यवृति) असमर्थ कही गई है तथा लक्षणा ही इस ऐज़्य को प्रस्तुत करने में समर्थ बतलाई गई है। अतः महावाज़्यार्थ निर्धारण में लक्षणा की उपयुज़्तता ही अद्वैताचार्यों को स्वीकृत है।

अद्वैतवाद भारतीय दर्शन का वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार परम सज्ञाएं दो नहीं, अद्वैत है। यहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि अद्वैत वेदान्त जब अन्तिम सत्ता को दो या दो से अधिक नहीं मानता तो उसे एक ही ज़्यों नही कहा गया। इसे एक नकारात्मक पद से ''अद्वैत'' ज़्यों कहा गया है ? इसका कदाचित् सबसे बड़ा कारण यह है कि शब्द ''एक'' या यों कहें, संज़्या ''एक'' ''दो'' से सोपक्षित होती। बिना दो के एक की कल्पना नहीं की जा सकती। यदि एक है तो दो भी होगा और अन्य संज़्याएँ भी होगी। किन्तु अद्वैत दर्शन में जिस परम सत्ता की चर्चा की गई है वह ''निरपेक्ष'' है, वह किसी भी अन्य संज़्या से सापेक्षित नहीं है। इसलिए इसे एक न कहकर अद्वैत कहा गया है। संक्षेप में, अद्वैतवाद सत् की संरचना में संज़्या के प्रवेश को अस्वीकार करता है। एकत्ववाद को अद्वैतवाद तभी कहा जा सकता है यहाँ एक से हमारा तात्पर्य निरपेक्ष एक से हैं न कि संज़्यागत एक से।

अद्वैत वैदान्त के अनुसार जब ब्रह्म की उपलब्धि (अनुभव) हो जाती है तो अनेकत्व स्वत: समाप्त हो जाता है।[1] अर्थात् जगत् की अनेकता वस्तुत: यथार्थ नहीं है ज़्योकि जब मनुष्य

को ब्रह्मनुभव हो जाता है तो उसके लिए विश्व की वस्तुएँ ब्रह्म के अतिरिज़्त कुछ नहीं रहती। इसे इस बात की अनुभूति हो जाती है कि ब्रह्म के अतिरिज़्त और कुछ भी वास्तविक नहीं है। व्यज़्ति केवल अज्ञानवश ही जगत् की अनेकता को यथार्थ समझ बैठता है। शंकर ने सत्ता की तीन अवस्थाओं को स्वीकार किया है–पारमार्थिक, व्यावहारिक एवं प्रातिभासिक। पारमार्थिक सत्ता परमात्मा है जो किसी का न तो विवर्तरुप है न ही परिणामरूप है, अतएव सत्य है। द्वितीय व्यावहारिक सत्ता भूत भौतिक प्रपञ्च है, जो आत्मा का विवर्तरूप तथा मूला अविद्या का परिणाम है। तृतीय प्रासिभासिक सत्ता रस्सी में सर्प की प्रतीति है जो कि रस्सी में रहने वाले चित् का विवर्तरूप तथा अविद्या का परिणाम है। पारमार्थिक ज्ञान के पूर्व तक प्रमाणों की गति मानी गई है। शरीर में आत्मप्रत्यय प्रमाणरूप से कल्पित है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष आदि प्रमाण भी तभी तक प्रमाण रूप में स्वीकार्य हैं, जब तक कि आत्मनिश्चय नहीं हो जाता।[2] तथा आत्मानुभव हो जाने पर सभी प्रकार के व्यवहारों का अभाव हो जाता है।[3] पारमार्थिक ज्ञान के लिए कौन सा प्रमाण उपादेय है, यह विचारणीय विषय है, ज़्योंकि ब्रह्म प्रत्यक्ष प्रमाणका विषय नहीं बन सकता। प्रत्यक्षज्ञान इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष पर आधारित है। ब्रह्म अतीन्द्रिय पदार्थ होने से आवङ्मनसगोचर है। अतएव अतीन्द्रिय पदार्थ का ज्ञान केवल शब्द प्रमाण गज़्य है।[4] शब्द ही पारमार्थिक तत्त्व के साक्षात्कार में एवं व्यावहारिक जगत् के ज्ञान में सशज़्त साधन है। शब्दमय भाषात्मक शास्त्र के अर्थनिर्धारण के लिए मुज़्यतया न्यायशास्त्र, मीमांसाशास्त्र एवं व्याकरण शास्त्र की ज़्याति है। शांकर वेदान्तियों ने भी अर्थनिर्धारण सिद्वान्त के क्षेत्र में कतिपय नवीन विषयों को समाहित किया है, जो इस सज़्रदाय का मौलिक योगदान है। जैसे–लक्षणा के क्षेत्र में भागत्यागलक्षणा को महावाज़्यार्थ निर्धारण में उपयुज़्त माना है।[5] शब्दप्रमाण के सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि वेदान्त दर्शन महावाज़्य व अवान्तर वाज़्यों के द्वारा ब्रह्मज्ञान को स्वीकार करता है।[6] अवान्तर शब्द का अर्थ मध्य होता है अर्थात् अवान्तर वाज़्य मध्यवर्ती होकर महावाज़्य के विश्लेषण में सहायक होते है। शांकर वेदान्त में प्रधान महावाज़्य चार हैं। इन्हें महावाज़्य इसलिए कहा जाता है, ज़्योकि इनमें वेदान्त का सर्वोच्च व सज़्पूर्ण ज्ञान निहित है। ये अत्यन्त लघुकाय होते है परन्तु परमसत्ता का सज़्पूर्ण ज्ञान इनमें निहित होता है। ये चार महावाज़्य–प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि तथा अयमात्मा (आत्मा) ब्रह्म हैं। इन महावाज़्यों का अर्थ ज्ञान होने पर ही इनकी सार्थकता है। महावाज़्यों के अर्थनिर्धारण में अभिधा शब्दशज़्ति समर्थ नही है, अत: अनुपयुज़्त कही गई है जबकि लक्षणा द्वारा ही महावाज़्यों का अर्थनिर्धारण करना सज़्भव हो पाता है अर्थात् लक्षणा में ही वह सामर्थ्य है जो महावाज़्यों का अर्थज्ञान करवा सकती है। अत: महावाज़्यार्थ निर्धारण में लक्षण की ही उपयुज़्तता स्वीकार की जाती है।

पञ्चप्रक्रिया के अनुसार मुज़्यावृति, गुणवृत्ति और लक्षणावृत्ति इन तीनों वृत्तियों में से गुणवृत्ति और लक्षणावृत्ति प्रत्यागात्मा अर्थ को प्रस्तुत करती है।[7] उसके विषय में कहते हैं कि मुज़्यावृत्ति को छोड़कर गुणवृत्ति और लक्षणावृत्ति इन दोनों का प्रत्यगात्मा में अप्रतिषेध है।[8] प्रत्यगात्मा में षष्ठी अर्थात् सज़्बन्ध नहीं हो सकता ज़्योकि प्रत्यगात्मा असङ्ग होने से उसका विषय नही हो सकता है। गुण भी नहीं हो सकता ज़्योकि वह निर्गुण है क्रिया भी नहीं हो सकता ज़्योकि वह निष्क्रिय है। जाति भी नहीं हो सकती ज़्योकि सदृश व्यज़्ति में ही जाति की परिकल्पना होती है, वह अद्वितीय है। रूढ़ि विषय में होती हैं अविषय में नहीं। अतएव प्रत्यगात्मा में मुज़्यावृत्ति असज़्भव होने से प्रतिषेध किया गया है।[9] इसी बात को संक्षेप शारीरक में भी कहा गया।[10] लोक में प्रसिद्ध जितने भी विशेषण है उस से वह परे है एवं वाणी एवं मन से भी परे है।[11] अतएवं प्रत्यगात्मा में सज़्बन्धादि असज़्भव होने से मुज़्यवृत्ति (अभिधा) प्रत्यगात्म अर्थ को प्रस्फुरित नहीं कर सकती।[12] मुज़्यावृत्ति प्रत्यगात्मा में सज़्भव नहीं। अतएव गौणी एवं लक्षणावृत्ति प्रत्यगात्ज़ अर्थ को उपस्थापित करने में समर्थ है।[13] सर्वज्ञात्ममुनि के अनुसार गुणयोग के आधार पर गौणीवृत्ति से अहम् शब्द की प्रत्यगात्मा में वृति स्वीकार की गई है।[14] संक्षेपशारीरक में भी कहा गया है कि निर्गुण ब्रह्म में किसी गुण का होना सज़्भव नहीं है। फिर भी प्रौढ़िवाद के आधार पर गौणीवृति का समर्थन किया गया है। जैसे लोक में 'अगिनर्माणवक:' 'सिंह पुमान्' इन उदाहरणों में बालक में दाहकत्व न होने पर भी तेजस्विता गुण को देखकर उसे 'अग्निर्माणवक ' कहा गया। इन प्रयोगों में भी मुज़्यार्थ की अनुपपत्ति के कारण ही गौणीवृत्ति स्वीकार्य है। उसी प्रकार 'अहं ब्रह्मस्मि' आदि प्रयोगों में भी 'अहम्' तथा 'ब्रह्म' पद शज़्यार्थ में रहने वाले चेतन आदि गुणों के कारण शुद्ध चैतन्य अर्थ का बोधक है।

अद्वैत वेदान्त में लक्षणा[15] तीन प्रकार की मानी गई है–जहल्लक्षणा, अजल्लक्षणा तथा जहदजहल्लक्षणा। प्रत्यगात्मा में जहल्लक्षणा और अजहल्लक्षणा ये दोनों सज़्भव है।[16] 'तत् ' पद एवं 'त्वम्' पद सद्वितीयशबल में अर्थात् प्रत्यज़्चैतन्य अर्थ में प्रयुज़्त है एवं परोक्ष्यबल और प्रत्यज़्चैतन्य में से एक अंश का परित्याग करके परिपूर्ण प्रत्यज़्चैतन्य सत् एकरूप अर्थ में इन दोनो पदों की वृन्ति सज़्भव है जैसे–'सोऽयम्' आदि वाज़्यस्थ पदों की वृत्ति सज़्भव है जैसे– 'सोऽयम्' आदि वाज़्यस्थ पदों की वृत्ति एक पिण्ड में होती है।[17] जैसे 'सोऽयं देवदत्त:' में भूतकाल विशिष्ट देवदत्त ही वर्तमान काल विशिष्ट देवदत्त है। यहाँ भूतकाल और वर्तमानकाल के वैशिष्टयरूप एक अंश में विरोध होने के कारण भूतकालिक विरूद्ध अंश को छोड़कर

अविरूद्धांश देवदत्त मात्र को जहदजहल्लक्षणा द्वारा प्रस्तुत करता है, उसी प्रकार 'तत्वमसि' महावाज़्य में परोक्षत्वादि विशिष्ट चैतन्य और अपरोक्षत्वादि विशिष्ट चैतन्य के एकत्वरूप वाज़्य के अर्थ का परोक्षत्वापरोक्षत्वादि एक अंश में विरोध होने पर परोक्षत्व व अपरोक्षत्व आदि वैशिष्ट्यरूप विरूद्ध अंश का परित्याग कर अविरूद्ध अंश अखण्ड चैतन्य को जहदजहल्लक्षणा द्वारा प्रस्तुत करता है । इस प्रकार तत् (ब्रह्म) तथा त्वम् (जीव) रूप एकत्व अर्थ की प्राप्ति से अद्वैतवेदान्त के परम प्रयोजन ब्रह्मात्मैज़्य की प्राप्ति हो पाती है । यह अभीष्ट अर्थ लक्षणा द्वारा ही प्राप्य कहा गया है।

अन्तटिप्पणी

1. यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
   तत्र को मोह : कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।। 7 ।। ईशावास्योपनिषद, पृ. 16
2. देहात्मप्रत्ययो यद्वत्प्रमाणत्वेन कलिपतः।
   लौकिकं तद्वदेवेदं प्रमाणं त्वाऽऽत्मनिश्चयात्।। ब्र. सू. शा. भा. 1.1.4
3. परमार्थावस्थायां सर्वव्यवहाराभावं वदन्ति वेदान्ताः सर्वे। वही, 2.1.14
4. शब्दमूलं च ब्रह्मशब्दप्रमाणकं नेन्द्रियादिप्रमाणकं तद्यथा शब्दमज़्युपगन्तव्यम्। वही- 2.1.27
5. तत्वमस्यादिवाज़्येषु लक्षणा भागलक्षणा।
   सोऽयमित्यादिवाज़्यस्थपयोरिव नाऽपरा।। वाज़्यवृत्ति-48, पृ.-125
6. 'अहं ब्रह्मास्मि' इति महावाज़्यार्थज्ञानादेव मुमुक्षूणां मोक्षो भवति। पञ्च-प्रक्रिया-2,
7. ननु मुज़्यगुणलक्षणावृतीनां मध्ये कतमा प्रत्यगात्मनि शब्दस्य वृत्तिरिति। पञ्चप्रक्रिया-1
8. तत्र ब्रूमः मुज़्यां वृतिं वर्जयित्वा गुणलक्षणावृत्योः प्रत्यगात्मन्यप्रतिषेधः। बही-1
9. षष्ठी गुणक्रिया जातिरूढीनां लौकिकानाम् अभावात् प्रत्यगात्मनि मुज़्या वृत्तिः प्रतिषिध्यत एव। वही-1
10. ''षष्ठीजातिगुणक्रियादिरहिते सर्वस्य विज्ञातरि,
    प्रत्यक्षे परिवर्जिताखिलजगद्द्वैतप्रपञ्चे दृशौ।
    सन्तयज़्तव्यवधानके परमेक विष्णोः पदे शाश्वते,
    त्वय्यज्ञानविजृज़्भिता न हि गिरो मुज़्यप्रवृतिक्षमाः''। सक्षेपशारीरक -1.239
11. यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्रप्य मनसा सह। तैतिरोयोपनिषद् 2.4.1

12. न खलु 'नेति नेति' प्रतिषिद्धसमस्तविशेषेण प्रत्यगात्मनि वाङ्मनसगोचरातीते पष्ठ्यादि असज़्भवोऽस्ति, येन मुज़्या वृत्तिर्घटेत्। पञ्चप्रक्रिया–1
13. तस्माद् गौणी लक्षणा वा शब्दस्य प्रत्यगात्मनि वृत्तिः। वही,1
14. इति गुणयोगादहमादिशब्दस्य गौणी प्रत्यगात्मनि वृत्तिरङ्गीकृतैव। वही–1
16. लक्षणापि जहल्लक्षणा अजहल्लक्षणा च नेष्यते, जहदल्लक्षणा तवङ्गीक्रियते। पञ्चप्रक्रिया–1
17. परोक्ष्यसद्वितीयशबले व्युत्पन्नयोः तत्वज़्पदयोः एकांशपरित्यागेनांशान्तरे वृत्तिसंभवात् 'सोऽयम्' इत्यादि वाज़्यस्थ पदयोरिव। वही–1
15. मानान्तरविरोधे तु मुज़्यार्थस्य परिग्रहे। मुज़्यार्थेनाऽविनाभूते प्रतीतिर्लक्षणोच्यते 11

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. वाज़्यवृत्ति, शंकराचार्य, श्री दक्षिणामूर्ति मठ, प्रकाशन, काशी, 2000।
2. ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 2009।
3. संक्षेपशारीरक, सर्वज्ञात्मन् रामतीर्थकृत अर्थप्रकाशिका सहित, चौखज़्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 1992।
4. पञ्चप्रक्रिया, सर्वज्ञात्मन्, इवानकोमरेककृत (Language and Release) आङ्गलानुवादसहित, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास, 1985।
5. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, सत्यानन्दी व्याज़्या सहित, चौखज़्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2007।